1. शीर्षक (Title of the thesis)

सरगुजा जिले में कार्यरत खेतिहर मजदूरों की आय रोजगार एवं गरीबी का विश्लेषणात्मक अध्ययन

2. प्रस्तावना (Introduction)

प्राक् ब्रिटिश काल में जमीन का स्वामी कौन था यह शोध तथा विवाद का प्रश्न है ? प्रसिद्ध समाजशास्त्री ए.आर. देसाई के अनुसार भूमि न तो व्यक्तिगत सम्पत्ति थी, न ही उस पर शासक या सांमत/जमींदार का स्वत्व था उनके अनुसार ''सारा गांव–गांव की जमीन का मालिक होता था।'' ग्रामीण समाज ही अपनी पंचायत के माध्यम से जोत खण्डों को किसान परिवारों में बांट देता था।

ब्रिटिश शासक वर्ग ने अपने स्वार्थ सिद्धि तथा भारत में ब्रिटिश आर्थिक हितों के संरक्षण हेतु 18वीं सदी के अंतिम चतुर्थांश में भारत में भू–व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करना आरंभ किया। इन परिवर्तनों के फलस्वरुप भूमि पर स्वामित्व के चरित्र में तथा कृषकों से लिए जाने वाले लगान की प्रकृति में बुनियादी बदलाव आया। प्राक् ब्रिटिश काल में भूमि पर सामुदायिक स्वामित्व था तथा लगान उपज के एक अंश के रुप में होता था, ब्रिटिश सरकार द्वारा इस क्षेत्र में अपनाई गई नीतियों ने सामुदायिक स्वत्व के स्थान पर वैयक्तिक स्वामित्व को तथा उपज पर आधारित भू–राजस्व के स्थान पर जमीन पर आधारित भू– भाटक (Land Rent) को स्थापित किया।

इस दिशा में पहला कदम उठाने का श्रेय लार्डकार्नवालिस को जाता है, उन्होने 1793 में बंगाल, बिहार व उड़ीसा में भूमि के स्थायी बन्दोबस्त को लागू किया।

स्थायी बन्दोबस्त ने जमींदारों को जमीन का स्वामी बना दिया। अब इस इलाके में जमीन न तो किसान की थी और न ग्राम समुदाय की, वह जमींदार की निजी सम्पत्ति थी जिस पर वह एक निर्धारित धनराशि (जमीदारी से तथा लगान का10/11) राज्य को देता था। स्थायी बन्दोबस्त ने भू–राजस्व की धन राशि को सुनिश्चित किया तथा जमीदारों के रुप में एक राजभक्त वर्ग को जन्म दिया किन्तु जहां तक किसानों का संबंध है यह अत्यंत उत्पीड़क तथा लुटेरी व्यवस्था सिद्ध हुई।

1820 में टॉमस मुनरों के द्वारा मद्रास में रैय्यतवाड़ी बंदोबस्त को आरंभ किया गया। इस व्यवस्था में जमीन का मालिक किसान को बनाया गया, इस तरह यह भी भूमि पर वैयक्तिक स्वामित्व का ही एक रुप था। रैय्यतवाड़ी व्यवस्था ब्रिटिश भारत के कृषि भू–भाग के 51 प्रतिशत पर लागू हुई, इसे जमीदारी प्रथा की तुलना में भारतीय परम्परा के अधिक निकट माना गया। किसानों के स्वामित्व की स्थापना इसका सकारात्मक पक्ष था किन्तु ''इस प्रथा ने भी भारतीय संस्थानों का वैसे ही हनन किया जैसे जमीदारी प्रथा ने।''

भूमि पर निजी स्वामित्व की स्थापना को ए.आर. देसाई एक कृषि क्रान्ति के रुप में देखते हैं उनका मानना है कि ''जमीन की निजी मिल्कियत की प्रथा शुरु कर अंग्रेजों ने कृषि के पूंजीवादी विस्तार की आवश्यक शर्तों की सृष्टि की।''

भू–राजस्व को पूर्णतः नकदी के रुप में वसूल किये जाने के कारण किसान के लिए यह जरुरी हो गया कि वह अपने उत्पादन को बाजार में ले जाकर बेचे तथा सरकारी लगान और महाजन के ऋणों का भुगतान करें। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार की नीतियों ने खेती को बर्बादी तथा किसान को दारिद्रय एवं ऋणग्रस्तता में धकेलने का काम किया। ऋणग्रस्ता ने किसान को भू–स्वामी के स्थान पर कृषि दास बना दिया। ऋणग्रस्तता एवं गरीबी के चलते किसान तेजी के साथ भूमि से हाथ धोकर भूमिधर के स्थान पर भूमिहीन की हैसियत में आ गए। किसानों के जमीन से वंचित होने की इस प्रक्रिया ने ग्रामीण समाज में एक नए सामाजिक वर्ग को जन्म दिया, यह था खेतिहर मजदूर वर्ग, जिसकी संख्या में तेजी के साथ वृद्धि होती गई।

भारतीय कृषि ढांचे में खेतिहर मजदूर सबसे गरीब पिछड़ा और उपेक्षित वर्ग है, इसकी आमदनी कम और रोजगार अनियमित है। इस वर्ग के लोगों के पास कोई और काम करने की कुशलता न होने के कारण वैकल्पिक रोजगार के अवसर भी नहीं है। सामाजिक दृष्टि से अधिकांश खेतिहर मजदूर अनुसूचित और आदिम जातियों के होने के कारण भी काफी पिछड़े हुए है।

प्रथम खेतिहर मजदूर जांच समिति (1951) के अनुसार

''खेतिहर मजदूर वे लोग है जिनके पास स्वयं की भूमि नहीं है और मजदूरी के बदले वे दूसरों के खेतों पर कार्य करते हैं।'' चूंकि भारत के अधिकांश लोग

मजदूरी के बदले वर्ष भर काम नहीं करते हैं, इसलिए समिति ने आगे चलकर और स्पष्ट किया कि ''कोई भी व्यक्ति जो कृषि मजदूरी के बदले 50 प्रतिशत या ज्यादा दिनों तक काम करता है वह खेतिहर मजदूर है।''

दूसरे शब्दों में ''किसी परिवार के मुखिया का 50 प्रतिशत या उससे अधिक रोजी कमाने वाले सदस्यों का मुख्य व्यवसाय कृषि है उसे खेतिहर मजदूर माना जाना चाहिए।''

3. उपलब्ध साहित्य का पुनरावलोकन

(Abrief review of the work already done in the field)

1. कुलश्रेष्ठ, डॉ लक्ष्मीरानी (2000)

अपने इस लेख में लेखिका ने बताया है कि स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधारों हेतु उठाए गए कदम अपर्याप्त थे और वे उत्पादन संबंधों में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं ला सके। इसलिए लगभग सभी खेतिहर मजदूरों के परिवार काफी संख्या में छोटे तथा सीमान्त किसानों की भूमिहीनों और गैर कृषि क्षेत्रों में काम करने वाले श्रमिकों के परिवार गरीब है प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि ग्रामीण गरीबी के लिए बढ़ती हुई जनसंख्या दोषी है अतः इस तर्क के अनुसार जहां एक ओर जनसंख्या बढ़ती जा रही है, वहीं दूसरी ओर भूमि उतनी ही रहने के कारण श्रम उत्पादकता और वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में कमी आती है।

हम अपनी उपलब्धियों पर तभी गर्व कर सकते हैं, जब समाज के प्रत्येक वर्ग विशेषकर पिछड़े और अभावग्रस्त वर्ग को समान सुविधाएं उपलब्ध करा सकें। यह निःसंदेह एक दुरुह कार्य है। सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयत्नों के साथ–साथ यह भी अत्यंत आवश्यक है कि स्वैच्छिक संस्थाए सरकार को इन प्रयासों में सक्रिय सहयोग दें और इस बात का भी हर संभव प्रयास करें कि योजनाओं का लाभ उन व्यक्तियों तक पहुंच सकें जिन्हें ध्यान में रखकर ये योजनाएं बनाई गई हैं तभी हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो सकेंगे।

2. प्रसाद, प्रो. कामता (2000)

हमारे देश में गरीबी उन्मूलन के प्रयास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लगातार चल रहे है लेकिन अब तक वांछित सफलता नहीं मिल सकी। लेखक ने इसके कारण गिनाते हुए बताया है कि जो धन गरीबी उन्मूलन के लिए निर्धारित किया जाता है, एक तो वह पर्याप्त नहीं होता और दूसरा उसमें से भी एक बड़ा भाग बीच में ही हड़प लिया जाता है। अब निजीकरण के दौर का भी इन गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, प्रो. प्रसाद ने सुझाव दिया है कि अनाज कपड़ा आदि गरीबों को सस्ते दामों पर दिए जाए भूमिहीनों को भूमि दी जाए और ज्यादा से ज्यादा लोगों को पूर्ण रोजगार की व्यवस्था की जाए। इसके लिए उच्च वर्ग के लोगों के सुख–सुविधाओं के साधन जुटाने पर होने वाले खर्च में कटौती की जा सकती है।

3. शर्मा, डॉ. राजेन्द्र कुमार (2002)

भारतीय किसानों के ऊपर डॉ. शर्मा ने बताया कि भारतीय किसान बहुत दरिद्र है क्योंकि भारत में प्रति एकड़ पैदावार अन्य देशों की तुलना में कम है भारत में प्रति एकड़ पैदावार (गेहूं) 700 पौण्ड है जबकि जापान में 1,713 मिस्र में 1,938 चीन में 898 है भारत में चावल 750 पौण्ड, जापान में 3,444 मिस्र में 2,998 चीन में 1,833 पौण्ड है। पुराने ढंग की खेती, गोबर को जला देना, सिंचाई की कमी, ऋणग्रस्तता, विवाह उत्सव आदि अवसरों पर अत्यधिक खर्च, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, खेतों का छोटे–छोटे टुकड़ों में बटा होना, किसानो का अपने खेतों पर स्वामित्व न होना आदि भारत मे कम उत्पादन के कारण है जो निर्धनता को बढ़ाते हैं, सरकार को इन सभी कारणों को दूर करने के उपाय करने होंगे।

4. संयुक्त राष्ट्र संघ रिपोर्ट (2005)

इस रिपोर्ट में बताया गया कि दुनिया भर में 24.5 करोड़ से भी अधिक बच्चों से मजदूरी कराई जाती है और इनमें 70 प्रतिशत बाल श्रमिक खेतों पर कार्य करते हैं, प्रतिवर्ष लगभग 22 हजार बच्चों की काम करते समय मौत हो जाती है, जिनमें से ज्यादातर खेत खलिहानों में दम तोड़ते हैं।

आगे संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने रिपोर्ट में मजदूरों के लिहाज से खेती को तीन सबसे खतरनाक क्षेत्रों में रखा गया है शेष दो क्षेत्र खनन और भवन निर्माण हैं। खुले आसमान कड़कती व चिलचिलाती धुप, बरसते पानी, कड़कते बादलों की

गड़गड़ाहट एवं गैर सुरक्षा के बीच इन विषम परिस्थितियों एवं गैर सुरक्षा की स्थिति में खेतों पर भूमिहीन कृषि श्रमिकों को खेतों पर कार्य करना पड़ता है। इससे लगभग 3.5 लाख कृषि श्रमिक घटनाओं के शिकार बनते है जो या मर जाते हैं या जख्मी और बीमार हो जाते हैं।

5. **वर्मा, श्रीमती चारुस्मिता (2005)**

इन्होने दुर्ग जिले के बालोद तहसील के कृषि क्षेत्र में भूमिहीन श्रमिकों का आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला है कि भूमिहीन श्रमिक अधिक बच्चों को जन्म देते हैं क्योंकि वह यह सोचते है कि परिवार में सदस्य जितने अधिक होगे उसके परिवार की आय उतनी ही अधिक होगी ऐसे भूमिहीन श्रमिक अपने बच्चों की आयु वर्ग 5 से ही बाहर काम पर लगा देते हैं और यही कारण है कि आयु वर्ग 5 से अधिक मे पुरुष तथा महिलाओं में भूमिहीन श्रमिकों का प्रतिशत अन्य आयु वर्गो की तुलना में अधिक है।

6. देवांगन, कुसुम (2007)

इन्होने अपने शोध प्रबंध में बताया है कि कृषि श्रमिक ग्रामीण व्यवस्था में सबसे नीचा स्थान रखते हैं। गांव में सामाजिक वर्गीकरण भूमि और जाति से संबंध होता है जो वर्ग विशेष की हैसियत, आर्थिक स्थिति तथा राजनीतिक प्रभाव और साथ ही इन सबके फलस्वरुप उसके रहन सहन के स्तर को निर्धारित करती है। सबसे ऊपर बड़ी जोतो वाले भूमि–स्वामी कृषक होते है। सभी कृषि फार्मों में श्रमिकों की नियुक्ति जाति वर्गो से सीधा और पूरक संबंध रखती है। ज्यादातर जाति न केवल व्यवसाय या फार्म की प्रकृति निर्धारित करती है वरन विभिन्न व्यवसायों या फार्मों में बहुत सी ऐसी उपजातियों को जन्म दिया है जो अब तक मालूम नहीं थी। अनुसूचित जातियों के व्यक्ति व आदिवासी हमेशा से ही कृषि श्रमिकों का अधिकांश भाग रहे हैं।

7. कश्यप, वंदना (2007)

कृषि उद्योग देश की अधिकांश जनता को रोजगार प्रदान करता है कृषि उद्योग पर न केवल देश के लगभग 75 प्रतिशत लोग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रुप से निर्भर है अपितु यह रोजगार का भी सर्वाधिक प्रमुख साधन है और एक विशाल जनसंख्या कृषि पदार्थो के व्यवसाय में संलग्न है। कृषि श्रमिकों की निर्धनता और बेरोजगारी को मिटाने की दृष्टि से कृषि क्षेत्र का विशेष महत्व है। कृषि अथवा खेतिहर

श्रमिकों की संख्या औद्योगिक श्रमिकों से लगभग 10 गुनी है। भारतीय अर्थव्यवस्था में खेतिहर मजदूरों की गरीबी दूर करने के लिए कृषि का विकास ही रामबाण औषधि है।

8. कोसरे, रामेश्वर लाल (2008)

इन्होने अपने शोध अध्ययन में बताया है कि भूमिहीन कृषकों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति खराब है और भूमिहीन कृषकों की दशा सुधारने के लिए किये गये शासकीय प्रयास अपर्याप्त है अर्थात भूमिहीन कृषकों की संख्या के अनुपात में चलाई जा रही योजनाएं अपर्याप्त है, नियमित नहीं है तथा पर्याप्त वित्त की कमी के कारण अपेक्षित लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सका है।

उपरोक्त शोध अध्ययन में इन्होने बताया है कि छत्तीसगढ़ राज्य एवं दुर्ग जिले में कृषि भूमि खनिज एवं वन के पर्याप्त भण्डार है, यदि उनका वैज्ञानिक तरीके से समुचित उपयोग किया जाता है एवं उनकी खामियों को हर संभव दूर किया जाता है तथा विकास हेतु वित्त की पर्याप्त व्यवस्था की जाती है, एवं कार्यक्रम नियमित रुप से चलाए जाते हैं तो निश्चित रुप से भूमिहीन कृषकों एवं खेतिहर मजदूरों की आर्थिक एवं सामाजिक दशा सुधारी जा सकती है।

9. भारत (2009)

जिला और उपमण्डल दण्डाधिकारियों को सांविधिक प्रावधानों को लागू करने के वास्ते कुछ दायित्व सौपें गए है इस अधिनियम के कानूनी प्रावधान लागू करने के लिए जिला और उपमडंल स्तर पर सर्तकता समितियां गठित करने की व्यवस्था भी की गई है इस अधिनियम में किसी व्यक्ति को बंधुआ मजदूरी करने के लिए मजबूर करने वाले या इसके लिए कर्ज देने वाले को तीन साल का कैद और 2000 रुपये तक के जुर्माने की व्यवस्था की गई है। बंधुआ मजदूर प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1976 के अनुसार बंधुआ मजदूरों की पहचान करना उन्हें छुड़ाना तथा उनका पुर्नवास करना संबंधित राज्य सरकार की सीधी जिम्मेदारी है।

10. चौधरी, रवीन्द्र कुमार (2011)

इन्होने अपने लेख में असम में कृषि की महत्व पर ध्यान केन्द्रित करते हुए बताया है कि असम में कृषि से आबादी के लगभग 73 प्रतिशत लोग खेती करके अपना गुजर–बसर करते हैं। इसमें से 57 प्रतिशत किसान है जबकि 8 प्रतिशत खेतिहर

मजदूर हैं इनमें पशुपालन, रेशम उद्योग, बागवानी और वानिकी आदि शामिल है। जाहिर है कि राज्य की आर्थिक स्थिति सीधे–सीधे कृषि से जुड़ी हुई है।

11. धनकड़, रवीन्द्र (2011–12)

15 अगस्त 1983 को ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम का शुभारम्भ किया गया। यह एक केन्द्र प्रायोजित कार्यक्रम था, इसका उद्देश्य ग्रामीण भूमिहीन मजदूरों के परिवारों के लिए कम से कम 100 दिन का वार्षिक रोजगार उपलब्ध कराना था। भूमिहीन श्रमिकों को रोजगार प्रदान करने के उद्देश्य से आधारित संरचना के निर्माण के कार्यक्रम अपनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। अप्रैल 1989 में शुरु जवाहर रोजगार योजना में विलयन के साथ ही ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया।

12. कश्यप, डॉ. एस.पी. (2011)

प्राक् ब्रिटिश ग्रामीण अर्थतंत्र मूलतः कृषि अर्थतंत्र था जिसमें भूमि के स्वामित्व का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता था जमीन का स्वामी कौन था यह विवाद का प्रश्न था सारा गांव ही गांव की भूमि का मालिक था। ग्रामीण समाज की अपनी पंचायत के माध्यम से जोत खण्डो को किसान परिवारों में बांट देता था। इस अर्थव्यवथा में कृषि तथा उद्योग एक दूसरे से एकताबद्ध थे। अतः गृह शिल्प और कृषि के सहज सरल संयोजन एवं तदजन्य अर्थतंत्र के कारण गांव अपना संतुलन सुरक्षित रख सकता था। इसी विशिष्टता ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विघटित होने से बचाया।

13. मैथ्यु, जार्ज (2011)

जम्मू कश्मीर से पंचायत चुनावों के दौरान लेखक ने कश्मीर का दूर–दूर तक दौरा किया। इस अध्ययन से जाहिर हुआ कि हल्का पंचायतों में चुनाव के दौरान भले ही खूब गहमा–गहमी रही हो, लेकिन वहां पूरा सामाजिक सद्भाव देखने को मिला। इसका प्रमुख कारण यह बताया गया कि राज्य में शक्तिशाली दबंगो द्वारा भूमिहीन पर धौंस जमाने की प्रवृत्ति बिलकुल नहीं है। इसका मतलब यह है कि 1950 से जो भूमि सुधार किए गए और नेताओं ने गरीबों के कल्याण के लिए जो नीतियां बनाई उनसे माकूल माहौल बन गया जिससे लोकतांत्रिक चुनाव और पंचायतों का कामकाज सही परिस्थितियों में चल रहा है।

14. सक्सेना, एन.सी. (2011)

इन्होने कृषि भूमि में महिलाओं का उत्तराधिकारी हक पर जोर देते हुए कहा है कि महिलाओं को सीधे भूमि का हस्तांतरण करने से न केवल महिलाओं को लाभ होगा, बल्कि बच्चों को भी लाभ होगा। भारत और विश्व के अनेक भागों में इस बात के प्रमाण है कि महिलाएँ विशेषकर निर्धन परिवारों की महिलाएँ पानी आय का अधिकांश भाग घरेलू आवश्यकताओं पर खर्च करती है जबकि पुरुष शराब, तम्बाकू आदि जैसे व्यक्तिगत उपभोग पर।

15. सिंह, अजित कुमार (2011)

इन्होने उत्तर प्रदेश के निर्धन ग्रामीणों में भूमि वितरण का प्रभाव का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला है कि भूमिहीन श्रमिकों और सीमांत कृषकों का वितरण सामाजिक न्याय और ग्रामीण विकास का प्रभावी साधन है। भूमि वितरण कार्यक्रम का आबंटियों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। उनके जीवन में गुणात्मक परिवर्तन आया है। उनका स्वास्थ्य अच्छा हुआ है और बच्चो की शिक्षा की स्थिति में सुधार आया है। इसी प्रकार कार्यक्रम के क्रियान्वयन में अनेक खामियों का भी पता चलता है यथा अपात्र व्यक्तियों का अनुचित चयन, भूमि प्रबंधन समिति का पक्षपातपूर्ण रवैया, भूमि का कब्जा मिलने में देरी, घटिया स्तर की जमीन का वितरण अवैध भुगतान (रिश्वत) की मांग, खेती के लिए सरकारी सहायता का अभाव आदि।

4. शोध का उद्देश्य (Objectives)

1. कृषि क्षेत्र में खेतिहर मजदूरों की सामाजिक–आर्थिक विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करना।
2. उनकी आय, रोजगार एवं गरीबी का विश्लेषण करना।
3. निदर्श ग्राम में गरीबी रेखा के निचें रहनें वालों का प्रतिशत ज्ञात करना।
4. खेतिहर मजदूरों की समस्याओं से अवगत होना।
5. अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के विश्लेषण के आधार पर उपयुक्त सुझाव देना।

5. प्रस्तावित कार्य का क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान (Noteworthy contribution in the field of proposed work)

कृषि क्षेत्र में खेतिहर मजदूरों की महत्वपूर्ण भूमिका होते हुए भी वर्तमान समय में इनकी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति अत्यंत दयनीय है। आदिवासी क्षेत्र में आज भी बंधक श्रमिक मौजूद हैं। अनुसूचित जातियों के मजदूरों को गांव के कुओं से पानी तक नही मिलता। इस अध्ययन में इन सभी विषयों से संबंधित समस्याओं को उजागर कर सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित करना है और खेतिहर मजदूरों को उचित लाभ पहुचाना है।

प्रस्तुत अध्ययन सरगुजा जिले के खेतिहर मजदूरों के उच्च जीवन स्तर एवं उपभोग स्तर में वांछनीय परिवर्तन करते हुए स्वस्थ परिवार, स्वस्थ समाज की कल्पना को साकार करने एवं ग्रामीण क्षेत्रों में वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था करने में उल्लेखनीय भूमिका निभायेगी।

6. शोध पद्धति (Proposed Methodology)

आंकड़ो का संकलन

प्रस्तुत शोध प्रबंध प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ो पर आधारित होगा। प्राथमिक आंकड़ो का संकलन अनुसूची द्वारा किया जायेगा। परिवार के मुखिया द्वारा संबंधित जानकारी ली जायेगी। उनके द्वारा रहन सहन के स्तर एवं उपभोग प्रवृत्ति के साथ–साथ प्रत्येक परिवार के जीविकोपार्जन के साधन एवं उपलब्ध सुविधाओं की जानकारी ली जायेगी।

द्वितीय आंकड़ो की जानकारी संबंधित विभागों द्वारा प्राप्त किया जायेगा। जिला एवं सांख्यिकी विभाग सरगुजा द्वारा जनसंख्या एवं खेतिहर मजदूरों से संबंधित सभी आंकड़े प्राप्त किये जायेंगें।

आंकड़ो का विश्लेषण

अध्ययन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यकता अनुसार सांख्यिकीय तकनीकियों जैसे–प्रतिशत, माध्य, सहसम्बंध, रेखाचित्र आदि का प्रयोग किया जायेगा।

शोध प्ररचना

अध्ययन में दो ब्लॉको का चयन किया गया है : प्रतापपुर और सीतापुर। इनमें समग्र खेतिहर मजदूरों की संख्या का 0.5 प्रतिशत न्यादर्श का चयन किया गया है। जो इस प्रकार है :

खेतिहर मजदूर

ब्लॉक	पुरुष श्रमिक	महिला श्रमिक	समग्र का 0.5%		योग
			पुरुष	महिला	
1. प्रतापपुर	9577	15147	48	76	124
2. सीतापुर	13640	24842	68	124	192
कुल	23217	39989	116	200	316

इस प्रकार हमारा अध्ययन 316 न्यादर्शो पर आधारित है जिनमें 116 पुरुष श्रमिक और 200 महिला श्रमिक है।

7. प्रस्तावित अध्ययन के द्वारा परिणाम की प्रत्याशा (Expected out come of the proposed work)

प्रस्तुत अध्ययन इस परिकल्पना पर आधारित है कि–

अशिक्षित खेतिहर मजदूर की तुलना में शिक्षित खेतिहर मजदूर अपने वर्तमान व्यवसाय से असंतुष्ट है।

संदर्भ वर्ष – प्रस्तुत शोध प्रबंध का संदर्भ वर्ष 2011–12 है।

8. अध्ययन की रूपरेखा (Chapterization)

शोध प्रस्तुतिकरण : शोध कार्य को सुनियोजित एवं क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत करने के लिए छः अध्यायों में बांटा गया है :

अध्याय प्रथम

इस अध्याय के अन्तर्गत प्रस्तावना, अवधारणा, शोध का उद्देश्य, शोध का क्षेत्र, शोध पद्धति, शोध परिकल्पना आदि का अध्ययन किया जायेगा।

अध्याय द्वितीय

उपलब्ध शोध साहित्य का पुनरावलोकन

अध्याय तृतीय

सरगुजा जिला : एक परिचय

अध्याय चतुर्थ

खेतिहर मजदूर की सामाजिक–आर्थिक विशेषताएं

अध्याय पंचम

खेतिहर मजदूरों की आय, रोजगार, एवं गरीबी का विश्लेषण

अध्याय षष्ठम्

अध्ययन का सारांश, निष्कर्ष एवं मुख्य सुझाव

संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography in standard format)

1) डॉ. लक्ष्मीरानी कुलश्रेष्ठ (2000) – ''ग्रामीण निर्धनता दृष्टिकोण में परिवर्तन की आवश्यकता'' (कुरुक्षेत्र अक्टूबर 2000) पृष्ठ 50

2) प्रो. कामता प्रसाद (2000) – ''गरीबी हटाने के प्रयास : विश्लेषण तथा निष्कर्ष'' (कुरुक्षेत्र अक्टूबर 2000) पृष्ठ 2

3) Dr. Rajendra Kumar (2002) - "Rural Socieology" Atalantic Publishersh and Distributors (New Delhi 2002 P - 374)

4) संयुक्त राष्ट्र संघ रिपोर्ट (2005) रामेश्वर लाल कोसरे (2008) (अप्रकाशित पीएच–डी. शोध प्रबंध 2008)

5) श्रीमती चारुस्मिता वर्मा (2005) – ''दुर्ग जिले के बालोद तहसील के कृषि क्षेत्र में भूमिहीन श्रमिकों का आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति का अध्ययन'' (अप्रकाशित पीएच–डी. थिसिस 2005)

6) कु. कुसुम देवांगन (2004) – ''कृषि श्रमिकों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन।'' (अप्रकाशित पीएच–डी. थिसिस 2007)

7) वंदना कश्यप (2007) – ''छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले में कृषि उत्पादन की प्रवृत्तियां एवं निर्धारक तत्वों का आर्थिक विश्लेषण'' (1980 से 2003–04) (अप्रकाशित पीएच–डी. – शोध प्रबंध)

8) रामेश्वर लाल कोसरे (2008) – ''कृषि क्षेत्र में कार्यरत भूमिहीन कृषकों का आर्थिक एवं सामाजिक विश्लेषण'' (अप्रकाशित पीएच–डी. शोध प्रबंध 2008)

9) भारत (2009) – प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण ग्रंथालय भारत सरकार पेज नं – 730

10) रवीन्द्र कुमार चौधरी (2011) – ''असम में कृषि ''योजना दिसम्बर 2011 पेज नं 35–36

11) रविन्द्र धनकड़ (2011) – भारतीय अर्थव्यवस्था / अतिरिक्तांक / 162

12) डॉ.एस.पी. कश्यप (2011) – प्रतियोगिता दर्पण / हिन्दी मासिक / सितम्बर 2011 / 285

13) जार्ज मैथ्यु (2011) – ''भूमि सुधार : जम्मू कश्मीर ने दिखाई राह'' (योजना अक्टूबर 2011 पेज नं. 24–25)

14) एन.सी. सक्सेना (2011) – ''कृषि भूमि में महिलाओं का उत्तराधिकारी हक'' (योजना अक्टूबर 2011 पेज नं. 11–13)

15) अजित कुमार सिंह (2011) – ''उत्तरप्रदेश के निर्धन ग्रामीणों में भूमि वितरण का प्रभाव'' (योजना अक्टूबर 2011 पेज नं. 28–30)

16) अर्चना शुक्ला – ''दुर्ग जिले के कृषि क्षेत्र में रोजगार स्तर यनौद ग्राम का एक अध्ययन'' लघु शोध प्रबंध 1984–85

17) आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय छत्तीसगढ़ 2009

18) धर्मपाल – ग्रामीण निर्धनता : ''समस्या एवं समाधान'' (योजना 15 दिसम्बर 1990 पृष्ठ – 82)

19) डॉ मामोरिया एवं जैन – ''भारतीय अर्थशास्त्र'' साहित्य भवन आगरा।

20) डॉ. सी.एस मिश्रा एवं डॉ. जे.एल. भारद्वाज, यूनीफाईड अर्थशास्त्र 2004 रामप्रसाद एण्ड संस भोपाल पृष्ठ 159

21) डॉ. एस.सी. शुक्ला एवं डॉ. शकील हुसैन ''शिक्षादूत छत्तीसगढ़ सार संग्रह'' तृतीय संस्करण 2005 शिक्षादूत ग्रन्थालय प्रकाशन समता कालोनी रायपुर पृष्ठ नं. 43–44

22) डॉ. एस.पी. कश्यप ''ब्रिटिश शासन का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर प्रभाव'' प्रतियोगिता दर्पण / सितम्बर / 2011 / 285–287

23) डॉ. बद्री विशाल त्रिपाठी – भारतीय अर्थव्यवस्था, सप्तम संस्करण 2001 किताब महल 22 सरोजनी नायडू मार्ग इलाहाबाद पृ.क्र. 280–282

24) गणेश कुमार पाठक – ''गरीबी के कारण एवं उसे दूर करने के उपाय'' (कुरुक्षेत्र मई 1991) पृष्ठ – 82

25) गणेश वारे – ''दुर्ग जिले में लघु एवं सीमांत कृषकों के मध्य आय एवं रोजगार का एक अध्ययन'' लघु शोध प्रबंध 1990–91

26) जगमोहन लालमाथुर – ''निर्धनता निवारण नया संकल्प'' (योजना, 30 जून 1992) पृष्ठ – 23

27) जयप्रकाश उपाध्याय – ''छत्तीसगढ़ में विकास की संभावनाएं'' दैनिक देशबंधु समाचार अंक 4 अक्टूबर 2000 प्रधान संपादक, मायाराम सूरजन फाऊण्डेशन समाचार रायपुर

28) जान्सन एण्ड जैक्सन शोध प्रविधि सोसियोलाजी पृ. 21

29) प्रदीप पन्त – ''ग्रामीण निर्धनता से मुक्ति कैसे संभव है''(कुरुक्षेत्र अक्टूबर 1988) पृष्ठ – 9

30) प्रणव मुखर्जी – ''ग्रामीण और विकास को समर्पित'' योजना अगस्त (1992) पृष्ठ नं. 5

31) प्रेम लाल शांडिल्य – ''भूमिहीन सीमांत एवं लघु कृषकों का आर्थिक अध्ययन'' ग्राम भोथीडीह के विशेष के संदर्भ में पी.एच.डी. शोध प्रबंधक 1991–92

32) रुद्रदत एवं के.पी. सुन्दरम् – ''भारतीय अर्थव्यवस्था'' एस. चन्द एण्ड कंपनी, नई दिल्ली (2004)

33) राजेन्द्र कुमार शर्मा – ''ग्रामीण समाजशास्त्र'' एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रब्यूटर्स, नई दिल्ली (2002)

34) एस.एस कुशवाहा – ''समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का समवर्ती मूल्यांकन'' ग्रामीण विकास न्यूज लेटर मार्च 1991

35) एस.के. मिश्रा एवं बी.के. पूरी – ''भारतीय अर्थव्यवस्था'' हिमालया पब्लिशिंग हाऊस मुम्बई (2006)

शोध निर्देशक

डॉ. (श्रीमती) राधा पाण्डेय
प्राचार्य
शा.सी.एल.सी. महाविद्यालय
पाटन, दुर्ग (छ.ग.)

सह शोध निर्देशक

प्रो.ए.के. पाण्डेय
अर्थशास्त्र अध्ययनशाला
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय
रायपुर (छ.ग.)

शोध छात्रा

कु. मीना गुप्ता
अर्थशास्त्र अध्ययनशाला
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय
रायपुर (छ.ग.)

विभागाध्यक्ष

प्रो. आर. प्रसाद
अर्थशास्त्र अध्ययनशाला
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय
रायपुर (छ.ग.)